दूसरा दिन - 17 सितंबर 2009

पूर्णा अनुभव

इंदिरा



इंदिरा और अन्य हमख्याल लोगों ने मिलकर 1995 में वैकल्पिक स्कूल, पूर्णा स्थापित किया था। हाल ही में, नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ एडवांस्ड स्टडीज़ से विज्ञान शिक्षकों के कार्य पर अपना शोध कार्य पूरा करके वे अज़ीम प्रेमजी फाउंडेशन से जुड़ी हैं ताकि अपने ज्ञान व अनुभव का उपयोग कमज़ोर तबके के बच्चों की शिक्षा में सुधार के लिए कर सकें। वे आज भी पूर्णा के न्यासी मंडल की सदस्य हैं और स्कूल के साथ नज़दीकी सम्बंध बनाए रखती हैं। इंदिरा का हमेशा से गहरा सरोकार रहा है कि पर्यावरण शिक्षा के ज़रिए जीवन की एक टिकाऊ शैली को कैसे उभारा जाए। उन्होंने पूर्णा में बच्चों को पर्यावरण व प्रकृति के बारे में पढ़ाने के अनुभवों की बात की और बताया कि कैसे अपने आसपास की दुनिया से जुड़कर बच्चे पर्यावरण चेतना विकसित करते हैं।

इंदिरा

अब तक हमने जो तकरीरें सुनीं उनमें तीन तरह के मुद्दे उभरे हैं - पहले हैं बराबरी की बजाय समता के मुद्दे; दूसरे हैं पर्यावरण, इकॉलॉजी और प्रकृति से सम्बंधित मुद्दे; और तीसरे व अंतिम हैं पर्यावरण शिक्षा से सम्बंधित मुद्दे। मैं जानबूझकर इन तीन शब्दों - पर्यावरण, इकॉलॉजी और प्रकृति - का उपयोग ढीले-ढाले ढंग से, पर्यायवाचियों के रूप में कर रही हूं। इस वक्त मेरी रुचि अवधारणात्मक शब्दों की सफाई करने में नहीं है। कई और लोग हैं, जो यह काम मुझसे कहीं बेहतर ढंग से कर सकेंगे। मेरे लिए ऊपर वर्णित मुद्दे अलग-अलग नहीं हैं। ऐसी शिक्षा नहीं हो सकती जो बच्चे के पर्यावरण से अलग हो। शिक्षा काहे के लिए है? इसका अर्थ क्या है?

मैं आपके सामने तीन धारणाएं भी रखना चाहूंगी जो मेरे मन में इस बारे में सोचते-सोचते आई हैं कि आज मैं क्या बात करना चाहूंगी। मेरी समझ में पर्यावरण शिक्षा के संदर्भ में तीन परस्पर सम्बंधित धारणाएंः बच्चे और पर्यावरण/प्रकृति का विचार (बच्चा और प्रकृति), दूसरा पर्यावरण/प्रकृति के बारे में बच्चे के विचार (बच्चे के मन में प्रकृति), और तीसरा विचार है बच्चा प्राकृतिक के नाते (प्रकृति के रूप में बच्चा)।

बच्चा और प्रकृति

शुरुआत में मैं पहली धारणा यानी बच्चे और प्रकृति के विचार को मेरे अपने बचपन के निजी विवरण के ज़रिए व्यक्त करूंगी। मेरी परवरिश झारखंड में हुई, एक कोयला खदान क्षेत्र के नज़दीक। मेरे पिता एक रसायन संयंत्र में काम करते थे और इसलिए एसिड जयराम के नाम से मशहूर थे। बचपन के लिहाज़ से वह बहुत सुंदर जगह थी। स्कूल में हमारे यहां पहाड़ों पर क्रॉस कंट्री दौड़ हुआ करती थी, तीन जलधाराएं थीं जहां हम जाया करते थे, और एक बड़ा सा धंसा हुआ स्थान था जहां खेलकूद की गतिविधियां होती थीं, पृष्ठभूमि में चारों ओर छोटा नागपुर का पठार था। सुबह-सुबह, मैं अपने लॉन में जाकर खूबसूरत पहाड़ियों के पीछे से सूर्योदय देख सकती थी। मगर उन्हीं पहाड़ियों पर बोकारो थर्मल पॉवर स्टेशन (BTPS) के धुंए की चिमनियां थीं। मेरा स्कूल वहीं था, घर से करीब 16 मील दूर। हम संथाल लोगों को खदान पर काम करके घर लौटते देखते थे, एकदम काले हो चुके, मगर हाथों में हाथ डाले - लड़के-लड़कियां, आदमी-औरत, सब सड़कों पर गाते हुए। फिर जब हम पाठ्य पुस्तकें पढ़ते, उस समय हरित क्रांति बड़ी चीज़ थी। तो हम कहा करते थे, 'ये किसान कभी रसायनों का इस्तेमाल करना नहीं सीखेंगे। ये लोग यूरिया डालकर कितनी ज़्यादा उपज ले सकते हैं।' उस समय हम ऐसी ही बातें करते थे।

जिस कारखाने में मेरे पिता काम करते थे, वहां नाइट्रस ऑक्साइड संयंत्र आसमान में नारंगी धुंआ पैदा करता था

जो हम देख सकते थे, और उसके आसपास के सारे पेड़ मर गए थे। वे नाइट्रेटिंग संयंत्र में काम करते थे जहां मोनो नाइट्रो टॉलुइन (MNT) बनाई जाती थी। हम आम तौर पर पिकनिक के लिए नदी - कोनार नदी - पर जाया करते थे जहां बोकारो घायी का पहला बांध बनाया गया था। वह बांध आज भी चालू हालत में है। यह बांध सिर्फ वर्षापोषित क्षेत्र के प्रबंधन के लिए बनाया गया था, यह बिजली पैदा नहीं करता था। पानी की गंध सूंघकर हम अपने पिता से कहा करते थे कि उनका कारखाना ही यह बदबू पैदा करता है, मगर वे इसके बारे में कुछ नहीं कहते थे और उनके नियोक्ता के प्रति वफादार बने रहना पसंद करते थे। यह हमारे बचपन के अनुभव का एक हिस्सा था।

दूसरी ओर, मेरी मां ने 1960 के दशक में रेचल कार्लसन को पढ़ा था और उनसे प्रेरित होकर वे कहती थीं, 'हमारे बगीचे - आलू, भिंडी, बेर वगैरह - में डीडीटी नहीं डालेंगे।' तो मुझे डीडीटी के हानिकारक असर पता थे क्योंकि मैंने पिताजी से झगड़ा किया था और हमारी सब्ज़ियों वाली क्यारी में डीडीटी की मनाही की थी। मगर हम यूरिया का उपयोग करते थे। मैंने खुद पत्ता गोभी के पौधों के आसपास यूरिया डाला है। आज मैं जैविक (organic) हूं, तो यह टिकाऊ जीवन शैली की ओर एक लंबी यात्रा रही है।

कई अन्य बातों ने भी मुझे प्रभावित किया है। जैसे, जब मैं काफी छोटी थी और नई-नई मां बनी थी, उस समय भोपाल गैस कांड हुआ था। मैं बहुत परेशान हुई थी और आज तक भी परिवार का कोई व्यक्ति यूनियन कार्बाइड द्वारा निर्मित एवरेडी बैटरी नहीं खरीदता। मैं कहना यह चाहती हूं कि पर्यावरण के बारे में जागरूकता उस जगह का हिस्सा थी, जहां हम पले-बढ़े। कई वर्षों बाद एक पालक के नाते मेरी चिंता थी, 'जब मेरे बच्चे बड़े होंगे, तब पर्यावरण कैसा होगा?' मैंने देखा है कि जिन बीस वर्षों में हम गोमिया में थे, पहाड़ नंगे होते गए थे, और साल के घने जंगल गायब होते गए थे। वहां एक अद्‌भुत पहाड़ी थी जिस पर उन्होंने एक आम वानिकी प्रजाति *एकेसिया ऑरिक्यूलोफॉर्मिस* का जंगल लगाया था। मगर विचित्र बात यह थी कि पहले उन्होंने सारे मौजूदा पेड़ हटा दिए और फिर वनीकरण के नाम पर ये पेड़ कतारों में लगाए। उस समय हम हज़ारीबाग के नजदीक रहते थे, जहां हज़ारों बाघों का निवास था; आज वहां बाघों की संख्या सिफर है। मगर कारखाने के मेगज़ीन क्षेत्र में जहां मेरे पिताजी काम करते थे, जहां विस्फोटक रखे जाते थे, वहां एक रॉयल बंगाल टाइगर मारा गया था और उसे घर-घर ले जाया गया था। आज बमुश्किल कोई बाघ बचा हो - शायद बेटला राष्ट्रीय उद्यान में कुछ बचें हों। मगर जब हम बच्चे थे, तब बाघ थे, हमारे बगीचे में भी उनके पदचिन्ह देखे हैं। तो उस समय जो पर्यावरण था, वह काफी बदल चुका है।

पहली धारणा - बच्चा और उसका पर्यावरण - पर लौटें। हम शिक्षकों का सरोकार यह होता है कि पर्यावरण बच्चे को क्या करता है, और बच्चा पर्यावरण से कैसे जुड़ता है। यह धारणा राष्ट्रीय पाठ्यक्रम ढांचा 2005 में भी झलकती है। झुग्गी बस्ती में रहने वाला कोई बच्चा भी अपने पर्यावरण से सीखता है। हम इस सीखने को ज्ञान कहें या नहीं, इसे हम कक्षा में लाएं या नहीं, हम इसका अर्थ बनने दें या नहीं, हम कक्षा में अपने शिक्षण के ज़रिए सोच समझकर बच्चे को प्रतिरोध करने दें या नहीं या उसका हिस्सा होने दें या नहीं - ये कुछ प्रश्न हैं जो हमें शिक्षा के संदर्भ में पूछना होगा।

सीखने के बरक्स बच्चा और उसका पर्यावरण की धारणा क्या है। पूर्णा में हमने कक्षा की उस प्रचलित धारणा पर सवाल उठाया जो बच्चे और उसके निकट के पर्यावरण के बीच की कड़ियों को काट देती है। हो सकता है कि बच्चा शारीरिक रूप से कक्षा में उपस्थित है, पाठ्यपुस्तक पढ़ रहा है, मगर अपने आसपास की किसी चीज़ से जुड़ नहीं रहा है। गोमिया के स्कूल में मेरा यही हाल होता था। सारा मज़ा तो हमें तब नसीब होता था जब घंटी बज जाती थी। पिताजी हमें रसायन कारखाने में ले जाते थे जहां हम वह देखते थे जो अपनी पाठ्यपुस्तकों में पढ़ते थे - उत्प्रेरक संयंत्र। मगर किसी आम कक्षा में ऐसे व्यावहारिक अनुभव की ज़रूरत नहीं मानी जाती थी।

सवाल यह है - कक्षा के अपने अनुभव को बाहर की दुनिया से जोड़ने का मतलब क्या है? मुझे याद है एक कक्षा

जहां मैं पढ़ा रही थी, जिसे बच्चों ने अंततः नाम दिया था 'Flies, fleas and flues', जिसमें हम स्कूल बाहर घूमे थे, कोडिगेहल्ली मेनरोड पर, जहां लोग थूक रहे थे, कुछ लोग नंगे पैर चल रहे थे, और कुछ लोग टट्‌टी कर रहे थे। यहां बच्चों ने सीखा कि जन स्वास्थ्य का मतलब क्या है। उन्होंने यह सब कुछ गगनचुंबी बहुमंज़िली इमारतों के बीच देखा था। इससे उन्हें सोचने का मसाला मिला, पर्यावरण के जैविक और सामाजिक अंगों के बारे में सोचने का। हमें खुद से यह सवाल पूछना होगा कि जब बच्चा कक्षा में इतिहास या विज्ञान जैसे विषय सीख रहा हो, तब बच्चे के पर्यावरण - और मेरा मतलब है सामाजिक, सांस्कृतिक या प्राकृतिक पर्यावरण - के कितने हिस्से पर उससे चिंतन करने को कहा जा सकता है। इसके अलावा, मुझे लगता है कि विज्ञान और वैज्ञानिक जैसी धारणाएं सामाजिक से बाहर नहीं हैं। मेरे ख्याल में 'वैज्ञानिक' को 'सामाजिक' के दायरे के अंतर्गत ही समझा जाना चाहिए। विज्ञान में परमाणु संरचना पढ़ाते हुए आप नागासाकी को अलग नहीं रख सकते। परमाणु ऊर्जा के बारे में पढ़ाते हुए आप जादूगोड़ा में खनन को या उत्तर-पूर्व में खनन के सम्बंध में चल रहे आंदोलनों को अलग नहीं रख सकते। आप बॉक्साइट से एल्यूमिनियम निष्कर्षण की बात और स्ट्रिप माइनिंग की चर्चा को अलग-अलग नहीं कर सकते। दरअसल, कल के वक्ता ने नियमगिरी पहाड़ी की चर्चा की थी, मेरी एक बहन वहां रहती है, आदिवासियों के साथ काम करती है, और वह इसे निश्चित रूप से जीवन का मुद्दा मानती है। हमने पूर्णा में उसे बुलाया था, बच्चों को यह बताने के लिए कि वहां क्या हो रहा है। उसने वहां जो कुछ होता है और शहरों में बहुत लोकप्रिय कोका कोला के एल्यूमिनियम के डिब्बों के बीच सम्बंध जोड़ने में मदद की थी। ये पेचीदा कड़ियां हैं। यहां किसी ने सवाल पूछा था कि क्या हमारा काम इन चीज़ों को सरल बनाना है? बात एकदम उल्टी है, हमारा काम सरलीकरण नहीं बल्कि इन सारी जटिलताओं के बारे में बताना है। हमें यह समझना होगा कि बच्चे प्रकृति और पर्यावरण के बारे में काफी पेचीदा ढंग से सोच सकते हैं और उन्हें पर्यावरण को बेहतर समझने में मदद करनी होगी।

किसी ने यहां पक्षी दर्शन की बात की थी। मुझे लगता है कि यह अच्छी बात है कि बच्चे शहरों में आज भी पक्षी देख सकते हैं। पूर्णा में बच्चों को स्कूल के समय में यहां-वहां घूमने की छूट है। एक बार एक छोटा बच्चा मेरी सीनियर कक्षा में आ गया, जहां थोड़ा व्यवधान हुआ था क्योंकि बाहर कक्षा के नज़दीक ही Bushchat नामक एक चिड़िया थी। यह बच्चा बहुत जिज्ञासु था और घर जाकर उसने अपनी मां को बताया, 'इंदिरा ने आज मुझे एक Bushchatter दिखाई।' और उसकी मां को यह जानकर बहुत आश्चर्य हुआ कि ऐसी किसी चिड़िया का वजूद भी है। पांच वर्ष की उम्र में वह बच्चा किसी भी पक्षी को उसके उड़ने के ढंग से पहचान सकता था। मैं फिर पूछती हूं - शिक्षकों के नाते हम बच्चे को कितने पर्यावरण के संपर्क में लाएं, कितना पर्यावरण बच्चे तक लाएं?

यहां मैं टैगोर की प्रेरक कहानी 'तोते की शिक्षा' का ज़िक्र करना चाहूंगी। इसमें वे इस धारणा पर सवाल उठाते हैं कि क्या शिक्षा के लिए हमें ढांचे बनाना चाहिए। कहानी में महाराजा तोते को शिक्षित करना चाहते, जो महाराजा के मुताबिक मूर्ख है, फूहड़ है और उसे 'तमीज़ नहीं है'। वह शैक्षिक ढांचे को सोने का पिंजड़ा कहता है। तो शैक्षिक ढांचे की चर्चा करते हुए, हमें इस बारे में गहराई से सोचना होगा कि शिक्षा में हम किस तरह के ढांचे निर्मित करना चाहते हैं। जब हम शिक्षा के लिए ढांचा बनाते हैं, तो हमारा आशय क्या होता है? और ये ढांचे क्या हों? ये निहित सवाल हैं जिनके बारे में हमें विचार करना चाहिए।

मुझे एक चिंता यह भी है कि जब हम UEE मिशन चालू करेंगे तो साथ ही हम ढांचे भी खड़े करेंगे। हम यह निर्धारित करने की कोशिश कर रहे हैं कि किस तरह के ढांचे होने चाहिए। क्या हम ऐसा कर सकते हैं? क्या कोई एक ढांचा है जो हर परिस्थिति में फिट हो जाएगा? हम वे कौन से अलग-अलग ढांचे सोच सकते हैं जो अलग-अलग परिवेशों में बच्चों को अपने पर्यावरण के बारे में सीखने में मददगार होंगे? इन सबको बच्चा और प्रकृति के बारे में कही गई बातों से जोड़कर देखा जा सकता है।

एक और मुद्दा उठाया जा सकता है कि बच्चे के लिए उसके पर्यावरण में क्या प्राकृतिक है। एक मां के नाते या

एक शिक्षक के नाते क्या हमारी भूमिका प्राकृतिक है? क्या बात एक अकेले बच्चे की है जो अलग-थलग कुछ सीख रहा है? नहीं, बिलकुल नहीं। इन्सान का बच्चा एक मानव समाज का अंग होता है, मानव संस्कृति का अंग होता है। प्रकृति बनाम संस्कृति का एक विरोधाभास भी है। बच्चे को एक प्राकृतिक परिवेश में बढ़ने देने के विचार थोड़े रूमानियत से भरे भी हो सकते हैं। हो सकता है कि हम पूरी तरह भूल जाएं कि बच्चे के लिए आसपास वयस्कों का होना, वयस्कों से सीखना, या तमाम अलग-अलग विधियों से सीखना सर्वथा प्राकृतिक है। यह कहना पियाजे की एक सरलीकृत समझ दर्शाता है कि अपने पर्यावरण को टटोलता बच्चा एक तनहा वैज्ञानिक है। जहां वायगोत्स्की सायास सीखने की बात करते हैं, कि सीखना संस्कृति के माध्यम से होता है, कि बच्चा जो कुछ सीखता है, दुनिया का जो भी अर्थ निकालता है, वह उसके सम्बंधों के माध्यम से होता है, और इसमें उसके भौतिक सम्बंध भी मध्यस्थता करते हैं। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि वायगोत्स्की रूस के एक मार्क्सियन थे और इसलिए उन्होंने भौतिक मध्यस्थता की बात की थी। मगर यह इस मुद्दे का और समस्याकरण करता है कि बच्चे का प्राकृतिक विकास वास्तव में क्या है। क्या प्राकृतिक विकास जैसी कोई चीज़ है भी? कुछ मनोवैज्ञानिक हमें समझाएंगे कि 'प्राकृतिक विकास' जैसी कोई चीज़ सचमुच होती है मगर सांस्कृतिक मानव शास्त्री और समाज शास्त्री इससे सहमत न होंगे। यहां तक कि इस धारणा पर भी सवाल उठाए जा सकते हैं कि बचपन को कैसे समझा जाए।

पूर्णा में ऐसे सवाल बहुत आम हो गए थे, जिन्हें रोज़ व्यावहारिक परिस्थिति में संभालना होता है। शिक्षक क्या करे? शिक्षक कब हस्तक्षेप करे? एक पर्यावरण तैयार करने का अर्थ क्या होता है? सोचने का एक हिस्सा यह भी है कि हमारे यहां कुछ लोगों का एक समूह था जो इसी धारणा पर आगे बढ़ने की कोशिश कर रहा था कि एक बच्चे के लिए प्राकृतिक रूप से विकास का क्या अर्थ है। शिक्षकों के नाते हमारी भूमिका क्या है? हम एक ऐसा पर्यावरण कैसे तैयार करें जो एक किस्म के सोच को सुविधाजनक बनाए या उसे बढ़ावा दे? टाइम टेबल होना चाहिए क्या? क्या आप उन्हें एक कक्षा का संचालन करने देंगे? हमने टाइम टेबल के साथ कई प्रयोग किए हैं - किसी ने टाइम टेबल बनाने पर हां कहा और फिर कुछ दिनों तक उसका पालन किया, अन्य लोगों ने कहा कि यदि बच्चे अंदर नहीं आते हैं, तो शिक्षक उनसे पूछ सकता है कि वे कक्षा में क्यों नहीं आए। बच्चों के एक समूह ने कहा कि टाइम टेबल नहीं होना चाहिए, और उन्हें लगता था कि वे जब चाहेंगे तब आएंगे और जब नहीं चाहेंगे तब नहीं आएंगे। बच्चों का एक और समूह था जो दो महीनों तक आया ही नहीं। तो अब क्या करें? तब हमें पालकों के सवालों का सामना करना पड़ा। बच्चे खुद नहीं जानते कि उन्होंने कुछ चीज़ें क्यों नहीं सीखीं या पढ़ीं, जबकि वे चीज़ें कक्षा में आने वाले बच्चे पढ़ चुके थे। हमने तोत्तो चान व्यवस्था भी आज़माई जो कुछ बच्चों के लिए काम कर गई। पूरी कक्षा ने तोत्तो चान पढ़ी और बच्चों ने पूछा कि क्या हमारे स्कूल में वैसी व्यवस्था हो सकती है, और हमने आज़माया। विचार यह था कि शिक्षक हरेक के काम बोर्ड पर लिख देंगी और वे तय करेंगे कि कब आकर उसे पूरा करें। और एक बार काम खत्म करने के बाद, बाकी समय वे बाहर खेलने जा सकते थे। इस बात पर सहमति बनी मगर वास्तव में जो हुआ वह यह थाः जो बच्चे शैक्षणिक काम के प्रति रुझान रखते थे वे पहले आते, काम खत्म करते और खेलने चले जाते। शेष बच्चे तीन बजे तक खेलते रहते। वे करीब साढ़े तीन बजे आते और उम्मीद करते कि वे छः के छः विषय निपटा लेंगे, और नहीं कर पाते थे। वे और-और पिछड़ते जाते। अंततः वे फंस जाते और शिक्षक के नाते आप फंस जाते। उस प्रयोग में एक बात यह हुई।

एक और चीज़ जो हमने की वह थी कि हमने बच्चों को एक प्रस्ताव दिया, कि वे जब क्रिकेट या कोई भी सामूहिक खेल खेलना चाहें, तो उन्हें एक सुगठित समूह के रूप में खेलना होगा। तो बच्चे साथ मिलकर कोई मैच पूरा करके साथ काम करने का फैसला करते। तो वास्तव में यह पूरी कक्षा ही होती थी। वे साथ-साथ आते, साथ-साथ खेलते और फिर साथ-साथ काम करते।

तीसरी बात यह हुई कि शिक्षकों ने पाया कि जब कोई बच्चा अकेले काम करता तो वह उस तरह की समझ हासिल

न कर पाता, जो तब संभव होती थी जब वे समूह में काम करते थे - आपस में बातचीत करते हुए, विचारों को उछालते हुए, वगैरह। तो हम सबने - शिक्षकों और बच्चों ने - साथ बैठकर स्थिति की समीक्षा की और तय किया कि हमें पुरानी व्यवस्था पर लौट जाना चाहिए जिसमें हम समूहों में काम करते थे और उस तरीके का पालन नहीं करना चाहिए जिसका वर्णन तोत्तो चान में किया गया है।

बच्चे में प्रकृति की धारणा

इसके साथ ही मैं अगले विचार पर आ जाती हूं - बच्चे के मस्तिष्क में प्रकृति की समझ। 'प्रकृति क्या है', इसकी धारणा बच्चे के दिमाग में होती है। यह बात मुझे एक घटना के दौरान उजागर हुई थी, वह घटना बताती हूं। हमारे स्कूल के बच्चे केरल में वायनाड के एक आदिवासी स्कूल में गए थे। इस स्कूल का नाम है कनवू। वे वहां आदिवासी बच्चों के साथ तीन महीने रहे थे। वे उनके साथ जंगलों में भी गए थे। वे आदिवासी बच्चे पूर्णा के समूह से उम्र में बड़े थे। वे जंगल में गए और अचानक उन्होंने एक पेड़ पर सिवेट बिल्ली - मारपट्टी - देखी। एक आदिवासी बच्चे ने तत्काल सायकल की स्पोक ली और उससे एक छोटा-सा तीर बना लिया, और बिल्ली को मार गिराया। उसे वहीं जंगल में गुपचुप खा भी गए क्योंकि उन्हें पता था कि बेबी ममन, जो कनवू स्कूल चलाती हैं, को पता चलेगा तो वे बहुत नाराज़ होंगी। हमारे स्कूल के बच्चे हतप्रभ थे, क्योंकि उन्हें पता था सिवेट बिल्ली ज़ोखिमग्रस्त प्रजाति है, मगर साथ ही वे उस लड़के के हुनर पर भी अंचभित थे जो यह काम कर सकता था। तो अब प्रकृति को लेकर यह विरोधाभासी विचार था - आदिवासी बच्चों की प्रकृति की धारणा शायद अलग थी, जिसमें बिल्ली का होना एक सामान्य बात है और वह जीवन-मृत्यु के चक्र एक हिस्सा थी और उसे मारना कोई बड़ी बात न थी। मगर पूर्णा के शहरी बच्चे एक ऐसे परिवेश से थे जहां बिल्ली दुर्लभ है और उसकी रक्षा की जानी चाहिए, और उसे खाने की वस्तु के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए। वह एक ऐसी चीज़ है जिसे अभयारण्य में सुरक्षित रखा जाना चाहिए। यहां हमें प्रकृति की परस्पर विरोधी धारणाएं नज़र आती हैं।

हमें बच्चों को पर्यावरण से सम्बंधित शब्दावली समझने में भी समर्थ बनाना होगा। जैसे, उपरोक्त घटना के संदर्भ में मैंने अभयारण्य का ज़िक्र किया, तो अभयारण्य क्या होता है? क्या आप अभयारण्य में से लोगों को विस्थापित करते हैं? पूर्णा के एक छात्र ने आगे चलकर वन्य जीवन जीव विज्ञान में स्नातकोत्तर उपाधि पूरी की, उसने जंगल की धारणा के इस मुद्दे पर भी गौर किया। जैसा कि उपग्रह से प्राप्त चित्र दर्शाते हैं, आसपास रहने वाले लोगों के कारण आरक्षित वन सिकुड़ते जा रहे हैं। आसपास बसे ये लोग कौन हैं? इनमें से कई सारे लोगों को यहां तब बसाया गया था जब कोई बांध परियोजना शुरू हुई थी। या उन्हें अभयारण्य से बाहर निकाला गया है क्योंकि अभयारण्य एक केंद्र है, एक सुरक्षित क्षेत्र है, जहां लोग नहीं रह सकते। यह लड़की एक बुज़ुर्ग आदमी से मिली जो एक विस्थापित आदिवासी थे। उन्होंने बताया, 'ठीक है, उन्होंने मुझे तो जंगल से बाहर कर दिया है, मैं अपना जंगल लगा लूंगा।' वास्तव में उन्होंने वे सारे बीज इकट्ठे कर लिए थे, जिनके साथ सोलिगा समुदाय के एक सदस्य के रूप में रहते आए थे, और उन्हें अपनी आधा एकड़ सरकारी ज़मीन पर उगाया था। उन्होंने बताया कि वे रागी या वैसी कोई चीज़ नहीं उगाएंगे क्योंकि वे उन्हें उगाना जानते नहीं। मगर उन्होंने अपने बीज संग्रह का उपयोग किया। मेरे ख्याल में यह अद्भुत बात है कि किसी ने ऐसा किया, और वे पर्यावरण के प्रति काफी सजग हैं। आप उन्हें जंगल के बाहर तो ले जा सकते हैं, मगर जंगल को उनसे बाहर नहीं कर सकते।



बच्चा प्रकृति के रूप में

जिस अंतिम विचार की मैं बात करना चाहूंगी, वह है कि बच्चा स्वयं प्रकृति है। यह विचार वैसे तो वैकल्पिक शिक्षा के साहित्य में मौजूद है, ज़रूरत है कि हम इस पर सैद्धांतिक

व व्यावहारिक दोनों नज़रियों से विचार करें। हम शिक्षा से क्या अपेक्षा करते हैं? सबसे पहले तो मैं यह कहूंगी कि शिक्षा से कुछ अपेक्षा करना सही है क्योंकि शिक्षा सायास होती है। यह कोई बेतरतीब प्रक्रिया नहीं है। हर समाज में अपने लोगों को उन चीज़ों में शिक्षित करने की प्रक्रियाएं होती हैं जो उन्हें महत्वपूर्ण लगती हैं। ये प्रक्रिया सायास होती है और सोची-समझी होती हैं। फिलहाल हो यह रहा है कि जैसे-जैसे शिक्षा का यह खास स्वरूप फैल रहा है, वैसे-वैसे शिक्षा के स्थानीय ढांचों की उपेक्षा हो रही है क्योंकि उनके पास इनके बारे में बातें करने की वैसी शैली नहीं है। यदि आप गांव में अपने दादा-दादी, नाना-नानी के साथ रहते हैं, तो जो कुछ आप सीखेंगे वह उससे बहुत अलग होगा जो आप स्कूल में सीखते हैं। तो यदि आप दादा-दादी, नाना नानी के साथ किसी भी कुदरती परिवेश में बिताई गई अवधी को छोटा कर देते हैं, तो उस तरह के ज्ञान का क्या होता है? वह कहां जाता है? उदाहरण के लिए एक दिन मैं बस में एक बुज़ुर्ग महिला से मिली थी, उनके हाथ में कुछ घास-फूस थी। मैंने पूछा कि ये काहे के लिए हैं, तो उन्होंने बताया कि ये उनके पेट के लिए अच्छी हैं। उन्होंने यह भी कहा कि "अगली बार जब तुम्हें पेट में दर्द हो तो डॉक्टर के पास जाने की बजाय यही पौधा खा लेना।" क्या उनकी बेटी इस पौधे का उपयोग इसी तरह करेगी? और जिस रफ्तार से सड़कें चौड़ी हो रही हैं, और हर चीज़ पर कॉन्क्रीट बिछाया जा रहा है, क्या कुछ सालों बाद ये जड़ी-बूटियां नज़र भी आएंगी? क्या किसी को पता भी चलेगा कि हमने क्या खो दिया? जब हम शिक्षा के कुछ खास रूपों के बारे में और जीवन की जो शैली हम अपनाते जा रहे हैं, उसके बारे में सोचते हैं, तो इस तरह के सवाल मेरे मन में आते हैं। शिक्षा के हर रूप में प्रकृति की एक खास समझ निहित होती है और यदि हम प्रकृति व पर्यावरण की एक ऐसी समझ उभारना चाहते हैं जो हमें इस धरती पर टिकाऊ ढंग से जीने की गुंजाइश दे, तो हमें इसके प्रति सजग रहना होगा।

पेरेडाइस लॉस्टः पूर्णा के एक शिक्षक का बयान

अंत में मैं अपने स्कूल की वेबसाइट से एक ब्लॉग पढ़कर सुनाऊंगी जिसे शिक्षकों ने पेरेडाइस लॉस्ट नाम दिया है। इससे आपको एक अंदाज़ लगेगा कि शहरी बच्चों के मन में प्रकृति और पर्यावरण को लेकर क्या चलता है। यह 5 दिसंबर, 2008 के दिन एक शिक्षक ने लिखा थाः

पूर्णा की नई इमारत देहाती क्षेत्र में, मुख्य शहर से काफी दूर इस मकसद से बनाई गई थी कि हमें अपने परिवेश के साथ प्राकृतिक ढंग से जुड़ने का अवसर मिले। पिछले एक-डेढ़ साल में स्कूल के चारों ओर आपको सिर्फ पेड़ और घनी झाड़ियां नज़र आती हैं। इस अवधि में पूर्णा के बच्चों और शिक्षकों दोनों ने आसपास की ज़मीन और जीवन से जुड़ना सीखा है। हम कई बार पैदल घूमने निकले हैं, जिन्होंने खोजी यात्राओं का रूप ले लिया, जहां बच्चों ने नई जगहों की खोज कीं और उन्हें नाम दिए हैं। इनमें से कुछ जगहों के नाम काफी संगीतमय हैं, जैसे सैफायर गार्डन और एण्ड ऑफ दी वर्ल्ड। कुछ नाम काफी ठोस धरातल पर भी हैं, जैसे दी फॉरेस्ट, और कुछ नाम मज़ेदार हैं, जैसे अंडरवेयर फैक्ट्री। एण्ड ऑफ दी वर्ल्ड वास्तव में अहाते का अंतिम छोर है, जिसके बाद तेज़ ढलान है और दूसरी रेवा इंजीनियरिंग कॉलेज है। तो यह दुनिया का अंतिम छोर है, एक ऐसी जगह जहां जाकर आप कक्षा से छिप सकते हैं।

स्कूल के आसपास के कई पेड़ व दृश्य चित्रों के केंद्रीय विषय रहे हैं। विभिन्न उम्र समूह के बच्चों ने आसपास के कई सामान्य पेड़ों को पहचानना सीख लिया है, और वे उन पर घोंसले बनाने वाले कई पक्षियों को भी पहचानते हैं। काफी सारे बच्चों को जंगल में रहने वाले कीड़े-मकोड़े - मकड़ियां, गिंजाइयां, फैक्टूट, बरसात में फुदकते छोटे-छोटे मेंढक, लेडीबर्ड गुबरैले, झिंगुर और तमाम रंगों और आकारों के गुबरैले - खोजने व देखने में मज़ा आता है। कुछ बच्चों ने स्कूल के आसपास से लकड़ी के लट्ठे, पत्तियां और इंटें लेकर अपने वृक्ष-घर भी बना लिए हैं। अन्य बच्चों ने पेड़ों के घेरे के बीच में ईंटें जमा ली हैं जहां वे गपशप और पार्टियां करते हैं। कई बच्चों ने ऐसे-ऐसे पेड़ों पर चढ़ने की कोशिश की है जो बहुत सरल नहीं लगते हैं। यदि आपको यह जानना हो कि किन पेड़ों पर चढ़ना

सरल है, या किन पेड़ों पर चढ़कर स्कूल या खेल के मैदान का सबसे अच्छा नज़ारा दिखता है, किन पेड़ों पर बैठना सबसे आरामदायक होता है, तो आपको बस इतना करना होगा कि किसी भी बच्चे से पूछ लीजिए और बहुत सारे बच्चे आपको अपनी-अपनी राय देने लगेंगे और पुराने स्कूल के पेड़ों और नए स्कूल परिसर के पेड़ों की तुलना करने में आपकी मदद करेंगे। मैं यह और बता दूं कि हर नए बच्चे को पेड़ पर चढ़ने में मदद मिली है। उनके पास पेड़ पर चढ़ने के क्रमिक अभ्यास हैं। यह सब बच्चे अपने आप करते हैं, और इसमें शिक्षक की कोई दखलंदाज़ी नहीं है।

अलबत्ता, नए हवाई अड्डे के निर्माण ने पूर्णा के आसपास काफी कुछ बदल दिया है। एक तो, पूर्णा की सड़क पर ट्राफिक बहुत बढ़ गया है। इसके अलावा, कई लोग स्कूल के आसपास खाली पड़ी ज़मीनें खरीद रहे हैं या बहुत पहले खरीदी गई ज़मीन पर निर्माण कर रहे हैं। पिछले कुछ दिनों में, स्कूल के प्रवेश द्वारा के सामने की ज़मीन साफ कर दी गई है। सारे पेड़ काट दिए गए हैं, काफी सारी झाड़ियां उखाड़ दी गई हैं और सारी सूखी घास को जला दिया गया है। यह सब जिस रफ्तार से किया गया, वह चकरा देने वाला था। सोमवार को खिड़की से देखते तो आपको सुंदर पेड़ नज़र आते। गुरुवार आते-आते इन पेड़ों के नाम पर बस ठूंठ, लकड़ी का बड़ा-सा ढेर और जली हुई काली ज़मीन बची थी। ज़मीन के इस टुकड़े की सफाई के पहले दिन बहुत सारे बच्चे बहुत बेचैन थे और जानना चाहते थे कि क्यों सारे पेड़-पौधों को उखाड़ा जा रहा है। उन्हें खास तौर पर यह चिंता सता रही थी कि पेड़ क्यों काटे जा रहे हैं। दूसरे दिन स्कूल आते ही कई बच्चों ने पहला काम यह किया कि सामने की ज़मीन का मुआयना किया कि कितना नुकसान हो चुका है। उस समय तक पहले दो पेड़ काटे जा चुके थे। इसने कई बच्चों में आक्रोश पैदा किया और पूरे दिन वे ऐसे सवाल पूछते रहे, “पेड़ों को काटने की क्या ज़रूरत है? ऐसा क्यों नहीं करते कि घास साफ कर लें और पेड़ों को रहने दें?” उन्हें यह भी समझ नहीं आ रहा था कि हममें से कोई कुछ कर क्यों नहीं रहा है। एक बच्ची ने तो यह सुझाव भी दिया उसकी पूरी कक्षा और जो भी पेड़ों की परवाह करते हैं, सब जाएंगे और पेड़ों से चिपक जाएंगे, उन्हें बचाने के लिए। तीसरे दिन, अपने-अपने तरीकों से, उन्होंने बदलाव को स्वीकार करना शुरू कर दिया था। उस दिन चर्चा के दौरान, यह देखना रोचक था कि जो कुछ बच्चे ‘भू-माफिया’ जैसे शब्दों से परिचित थे, उन्होंने बताया कि कैसे अच्छी जगहों पर खाली पड़ी ज़मीन को गैर-कानूनी ढंग से हथिया लिया जाता है और उस पर निर्माण किया जाता है। गुरुवार के दिन, सामुदायिक कार्य के एक सत्र में, मूनस्टोन समूह के बच्चों से पूछा गया कि स्कूल के सामने वाली ज़मीन के टुकड़े पर क्या हो रहा है। उनके कुछ जवाब यहां देखिएः

दीपा

जब पेड़-पौधे काटे जा रहे थे, तो मुझे बहुत बुरा लगा। मगर यदि वे उस लकड़ी और ज़मीन का उपयोग घर बनाने जैसे किसी अच्छे काम में करेंगे तो मुझे थोड़ा अच्छा लगेगा। मुझे उन पेड़ों की बहुत याद आएगी क्यों हम वहां लुका-छिपी खेलते थे, और कभी-कभी पढ़ाई करते थे। हमें वे पेड़ बहुत अच्छे लगते थे।

पीटर

ठीक ही है। यह उनकी ज़मीन है। मगर उन्हें और ज़्यादा पेड़ लगाने चाहिए क्योंकि पेड़ों से हमें ऑक्सीजन और छाया मिलती है। पेड़ पक्षियों और जानवरों के घर होते हैं। यदि पेड़ हो, तो आप वृक्ष-घर बना सकते हैं।

अखिल

सब एकदम ठीक है। वह मेरी ज़मीन नहीं है। यदि वह मेरी ज़मीन होती, तो मैं वैसा नहीं करता।

गणेश

वे लोग कागज़ या प्लाइवुड बनाने के लिए, पैसे के लिए पेड़ काट रहे हैं यदि आप इस तरह से पेड़ काटेंगे, तो

आप प्रदूषण बढ़ा रहे हैं, अपनी धरती को नष्ट कर रहे हैं, और खुद को नष्ट कर रहे हैं। इसलिए कृपया पेड़ काटना बंद कीजिए। ज़्यादा पेड़ लगाइए और जहां तक संभव हो, चीज़ों को रिसायकल करने की कोशिश कीजिए। हम भी तो प्रदूषण और पेड़ कटाई को रोकने की कोशिश कर रहे हैं। कृपया पेड़ों को बचाइए।

अरनव

जो लोग पेड़ काट रहे हैं, वे बुरा काम कर रहे हैं। उन्हें पेड़ नहीं काटना चाहिए क्योंकि वे पर्यावरण को बिगाड़ रहे हैं और हरियाली कम कर रहे हैं।

ध्रुव पुजारी

वे जो कुछ कर रहे हैं, उससे मैं बहुत मायूस हूं। मैं और मेरे दोस्त उस जगह को स्वर्ग कहते थे क्योंकि वहां पक्षियों और तितलियों की इतनी अद्भुत विविधता है। मुझे उस जगह की कमी बहुत खलेगी।

मनोज

मुझे लगता है कि वे जितने पेड़ काटें, उससे ज़्यादा लगाना चाहिए। मगर मुझे लगता है कि सरकार को भी एक कानून बनाना चाहिए कि लोग जितने पेड़ काटें, उससे ज़्यादा लगाएं। ज़मीन साफ होने का मुझे बहुत दुख है, मगर यह प्रकृति का तरीका भी है।

ध्रुव आर

जिन लोगों ने पेड़ काटे हैं, उन्होंने बुरा काम किया है क्योंकि वे बहुत सारे जीवन की हत्या कर रहे हैं और अब वे उसे जला रहे हैं, जिससे प्रदूषण होता है। इसलिए मुझे लगता है कि उन्हें और ज़्यादा पेड़ लगाना चाहिए।

गगन

कुछ लोग हमारे स्कूल के सामने पेड़ काट रहे हैं और ज़मीन का उपयोग अपने काम के लिए कर रहे हैं। वे जो कर रहे हैं, वह मुझे अच्छा नहीं लग रहा है। वे हमारे बढ़िया एयर कंडीशनर्स बरबाद कर रहे हैं। मैं नहीं चाहता कि वे पेड़ काटें।

समीर

ज़मीन साफ करने के लिए पेड़ काटना तो बुरी बात है ही, ऊपर से लकड़ियों को जलाने से प्रदूषण भी हो रहा है। यदि पेड़ काटने ही हैं, तो कम से कम उनका उपयोग मकान जैसी कोई उपयोगी चीज़ बनाने में करो। लकड़ी को जलाना क्यों?

तो एक मायने में बच्चे स्वामित्व के मुद्दों, ज़मीन के वैकल्पिक उपयोग को देख रहे हैं और उनके प्रति संवेदनशील बन रहे हैं, और इन सरोकारों से सम्बंधित कानूनी मुद्दों से भी दो-चार हो रहे हैं। उन्होंने कहा कि सरकार को कानून बनाना चाहिए। वे इस बात का सम्मान करते हैं कि कोई सम्पत्ति किसी की हो सकती है, हालांकि उस पर भी सवाल उठा सकते हैं। मगर इतना स्पष्ट है कि जब गुंजाइश दी जाती है, तो बच्चे खुद चीज़ों के बारे में सोचते हैं। उनमें काफी छोटी उम्र से ही ऐसे कई मुद्दों के बारे में सोचने की क्षमता है।

फिलहाल मैं यहीं रुकना चाहूंगी। शुक्रिया।

संध्या गत्ती, दी टीचर फाउंडेशन

इंदिरा ने जो कुछ कहा, उसके लिए मैं उन्हें धन्यवाद देना चाहती हूं क्योंकि मेरे बच्चे उनके स्कूल में पढ़े हैं, और उन्होंने जो प्रतिक्रियाएं पढ़ीं, उनमें से एक मेरे बेटे की थी। ये बच्चे बहुत संवेदनशील हो गए हैं। उन्होंने मेरे बच्चों के लिए जो कुछ किया है, उसके लिए मैं उन्हें धन्यवाद देना चाहती हूं।

हार्डी

आपने जो मुद्दे उठाए हैं, मेरे ख्याल में उनमें से कुछ बहुत महत्वपूर्ण हैं। बहरहाल, मेरे कुछ सवाल हैं। यह एक निजी अनुभव है और इसमें से कुछ भी अलग नहीं किया जा सकता, मगर आपके विवरण से जो मुख्य विचार मुझे मिला, उसका सम्बंध इस बात से है कि किस तरह का शिक्षक यह सब कर पाएगा, और खुद शिक्षक के विचारों से है। यदि विकास व समता को लेकर शिक्षक के विचार आपके विचारों से भिन्न हैं, तब भी क्या आपको लगता है कि इस तरह की खुली चर्चा संभव हो पाएगी? फिर, मान लीजिए कि शिक्षक का रवैया सही है। तो भी उसे उस तरह की जानकारी कहां से मिलेगी जो आपके पास है, जिस तरह के सामाजिक मुद्दों के बारे में आप जानती हैं या जिस तरह के आंदोलनों के बारे में आप जानती हैं और उन्हें लेकर आपका परिप्रेक्ष्य क्या एक-सा होगा? मेरे विचार में पर्यावरण को लेकर खुले विचार-विमर्श का यह केंद्रीय मुद्दा है, खास तौर से उस संदर्भ में जिसकी चर्चा कल शरद ने की थी।

मेरा दूसरा सवाल बच्चा प्रकृति के रूप में के विचार से सम्बंधित है। दो तरीकों से आप बच्चे को प्रकृति के रूप में देख सकते हैं। एक है बच्चा प्रकृति के रूप में - कि आप बच्चे को कैसे शिक्षित करते हैं, आपने शायद इस नज़रिए से देखा था। मगर इससे एक और सवाल उठता है। यदि बच्चा प्रकृति है, तो वयस्क भी तो प्रकृति ही हैं। और यदि प्रकृति को प्राकृतिक ही रहना है, तो बदलाव कैसे होगा? तो फिर, अकार्बनिक यूरिया भी प्राकृतिक है - यह मानव मस्तिष्क की रचना है। यानी यदि विचार प्राकृतिक है, तो फिर अकार्बनिक यूरिया प्राकृतिक क्यों नहीं है? यह एक चकराने वाला सवाल है। इस तर्क में हम एक बार फिर बच्चे की बात प्रकृति के रूप में करने लगते हैं।

आप वास्तव में उस सवाल की बात कर रही हैं जो हमने कल उठाया था - आप फैसला कैसे करते हैं? तंत्र कैसे फैसला करता है? एक शिक्षक ऐसे नैतिक सवालों पर फैसला कैसे करती है, क्या इन्सान वास्तव में इस धरती पर मूल निवासी हैं, क्या इन्सान वास्तव में बराबर हैं? क्या हमारे साथ बराबरी होना ज़रूरी है? और फिर इस चर्चा को इस संदर्भ में रखना कि अलग-अलग परिस्थितियों में आप क्या करें।

मेरा सरोकार है कि जो प्रतिक्रियाएं आपने पढ़कर सुनाईं, वे आपके छात्रों की प्रतिक्रियाएं थीं। मुझे नहीं पता कि क्या तमाम किस्म के स्कूलों में उस तरह से टटोलने का तत्व भी होगा जो इन प्रतिक्रियाओं में झलकता है। ज़ाहिर आपके साथ हुई अंतर्क्रिया ने उन्हें काफी प्रभावित किया है। तो एक स्तर पर, एक शिक्षक के रूप में, एक हस्तक्षेपकर्ता व्यक्ति के रूप में, अपने बच्चों के साथ खोजबीन करना एक अच्छी बात है मगर शैक्षिक नीतियों के एक तंत्रगत हस्तक्षेप के संदर्भ में आप क्या कहेंगी?

इंदिरा

मैं पहले सरल सवाल का जवाब दे देती हूं। अंतर्क्रिया मेरे साथ नहीं होती। वास्तव में मैं तो इसे ब्लॉग पर पढ़कर आश्चर्यचकित और खुश हुई थी। मैं कई वर्षों से पूर्णा में नियमित रूप से नहीं पढ़ा रही हूं। तो यह मैं नहीं हूं, यह किसी अन्य शिक्षक ने लिखा है। मैंने इन बच्चों को कभी नहीं पढ़ाया है, इसलिए मैं इसे खास तौर से साझा करना चाहती थी।

हार्डी

मैं 'आप' के बारे में एक व्यक्ति के रूप में नहीं, एक तंत्र के रूप में बात कर रहा हूं।

इंदिरा

मुझे लगता है आपने एक रोचक सवाल उठाया है। हो सकता है कि किसी ऐसे व्यक्ति को स्कूल में आकर इस सवाल को देखना चाहिए, जो प्रत्यक्ष रूप में वहां काम नहीं करता। मगर अचरज की बात यह है कि विचारों में

परिवर्तन काफी तेज़ी से आ जाता है। मेरा मतलब है, वहां मुख्यधारा के शिक्षक आते हैं, और एकाध महीने के अंदर वे रम जाते हैं। औपचारिक प्रशिक्षण जैसा कुछ नहीं किया जाता। यह तो पक्की बात है कि यहां के बच्चे भी उनसे सीधे सम्बंधित मुद्दों पर उसी तरह की चर्चा करेंगे क्योंकि एक तरह का सम्बंध होता है, मगर मैं नहीं कह सकती कि क्या उसी तरह की खोजबीन अन्य बच्चों के साथ हो पाएगी। मेरे ख्याल में आपका सवाल यह है कि ऐसी खोजबीन क्यों हो पाती है या क्यों नहीं हो पाती। निसंदेह हमें ऐसे सवाल पूछना होगा। इसके अलावा, यदि चीज़ों के बारे में बात करने में संवेदनशीलता लानी है, तो हमारे स्कूल कैसे होने चाहिए? जब आप परमाणु बिजली घर की बात करें, तो आपको इस बात पर भी ध्यान देना होगा कि युरेनियम कहां से निकाला जा रहा है। मैं आपको कई उदाहरण दे सकती हूं, जहां बच्चे ऐसे सवाल पूछते हैं। जैसे, दसवीं के एक बच्चे को पढ़ाती थी, उसे गोवा में अपने क्षेत्र में अवैध लौह खनन की बहुत चिंता थी।

सिद्धार्थ

बहुत बढ़िया प्रस्तुतीकरण था। मेरे दिमाग में जो सवाल है वह पूर्णा और सीएफएल जैसे स्कूलों के बारे में है। ये ऐसे स्कूल हैं जो मुख्यधारा के पालकों को डरा देते हैं, और मुख्यधारा के स्कूल इन प्रयोगों से बहुत भिन्न हैं। यहां हम बात कर रहे हैं जलवायु परिवर्तन की और अगले 20-30 सालों में संभावित खतरनाक चीज़ों के बारे में। मैं बार-बार सोचता हूं कि शायद ऐसे स्कूलों और ऐसे प्रयोगों का वक्त आ गया है क्योंकि ऐसे स्कूलों में एक तरह की जागरूकता पैदा की जाती है जो बच्चों को अपने परिवेश को एक प्राकृतिक, सहज व समग्र ढंग से देखने का मौका देती है। आज हम जिस बरबादी के भंवर में हैं, उसका कुछ सम्बंध तो उस चेतना से है जो हमने बड़े होते हुए, शिक्षा की वजह से, समाज के लक्ष्यों की वजह से, और जीवन के लक्ष्यों की वजह से हासिल की है। आपके स्कूल में शिक्षा की प्रक्रिया एक ऐसी चेतना विकसित कर रही है जो हमें धरती पर थोड़े हल्के कदमों से चलने की गुंजाइश देती है।

जब आप बोल रही थीं, तब मेरे दिमाग में एक विचार यह आया था कि क्या ऐसे प्रयास किए गए हैं कि ऐसे स्कूलों और मुख्यधारा के स्कूलों के बीच संवाद हो सके, क्या विप्रो या इस तरह के संगठन इस बात पर विचार कर सकते हैं कि वक्त आ गया है कि यहां जो कुछ हो रहा है, वह पालकों को भी बताया जाए, और ऐसे स्कूलों को भी बताया जाए जिन्हें पता ही नहीं है कि आप क्या कर रहे हैं। क्योंकि कई स्कूल मानते हैं कि शिक्षा खाली घड़ों को भरने का नाम है। जब तक यह प्रयास छोटा व हाशिए का माना जाएगा, तब तक इसका तंत्र पर कोई असर नहीं होगा। क्या इस प्रयास को बहुगुणित करने की कोई संभावना है? मैं जानता हूं यह रातों-रात नहीं हो सकता। मगर जब बड़ी संख्या में लोग पर्यावरणीय मुद्दों को लेकर जागरूक होंगे, तो शायद एक संवाद के लिए खुलापन उभरेगा।

विष्णु अग्निहोत्री, एजूकेशनल इनिशिएटिव

बहुत दिलचस्प प्रस्तुतीकरण के लिए शुक्रिया। प्रस्तुतीकरण बहुत व्यक्तिगत नज़रिए से था। ज़ाहिर है मुद्दे बहुत पेचीदा हैं; जैसे आपने सिवेट बिल्ली के बारे में टकराव की बात की - उसे बचाएं या खाएं, या प्राकृतिक क्या है, वगैरह। मेरे मन में दो-तीन त्वरित टिप्पणियां हैं। पहली, कि शिक्षित करने की ज़रूरत सिर्फ बच्चों को नहीं है, क्योंकि हम वयस्क लोग भी मुद्दों से जूझ रहे हैं। हमारे पास या तो संवेदनशीलता का अभाव है या समझ का अभाव है या स्पष्टता का अभाव है, और ऐसे सवालों पर सिर्फ दार्शनिक जवाब ही होते हैं। मुझे नहीं पता कि क्या जब तक वयस्क भी इस बहस का हिस्सा नहीं बनते और इन मुद्दों पर शिक्षित नहीं होते, तब तक हम कुछ भी करने की उम्मीद रख सकते हैं। दूसरी, कि ये मुद्दे निहित तौर पर बहुत पेचीदा होते हैं। मेरी निजी राय है कि पैसा कभी समस्या को हल नहीं करेगा। इसके लिए चेतना व संवेदनशीलता की ज़रूरत होगी। इस संदर्भ में मुझे लगता है कि जो एक सबसे महत्वपूर्ण चीज़ हमारे स्कूलों में और सीखने के आम माहौल में होनी चाहिए, वह है अथॉरिटी को तोड़ना क्योंकि यह संवाद इसीलिए नहीं हो पाता है क्योंकि यह माना जाता है कि किसी को उत्तर मालूम हैं।

अंजलि

पूर्णा जैसे स्कूलों के उदाहरण हमेशा प्रेरक होते हैं। एक सवाल तो यह है कि अधिकांश स्कूल पर्यावरण कार्य से पाठ्यक्रम की दृष्टि से, क्या पढ़ाया जाए वगैरह के मामले में बहुत सजीव ढंग से जुड़ते हैं। आप खुद ही मिलकर तय करते हैं और किसी पाठ्य पुस्तक का उपयोग नहीं करते। दूसरी ओर, पाठ्य पुस्तकें मौजूद हैं। हममें से कुछ लोग पाठ्य पुस्तक विकसित करने में जुड़े हैं, एनसीईआरटी या राज्यों वगैरह के लिए, जो बहुत केंद्रीकृत हैं। हम एक्टिविस्ट, आलोचनात्मक किस्म की शैली भी अपनाते हैं। जिस तरह के उदाहरण आपने बताए, यदि उन्हें केंद्रीकृत पाठ्य पुस्तकों में शामिल किया जाए, तो उन्हें बच्चों के अनुभव से कैसे जोड़ा जा सकता है? इनका सकारात्मक ढंग से इस्तेमाल कैसे किया जाए और ये स्थानीय उदाहरणों के साथ कैसे घुल-मिल जाएं? कई मर्तबा ये उदाहरण अधिकांश बच्चों से सम्बंधित नहीं होते, जबकि हम इन्हें पाठ्य पुस्तकों में डालने को लेकर बहुत जोश में आ जाते हैं। मगर क्या इन उदाहरणों का कुछ अर्थ बन पाता है? इन दो के बीच, बड़े पैमाने पर स्कूल स्तर पर विकेंद्रित पाठ्यक्रम और केंद्रीकृत पाठ्यपुस्तकें, किस तरह का सम्बंध है?

एस.सी. बेहार

आपके दिलकश प्रस्तुतीकरण के लिए शुक्रिया। एक बात वास्तव में कही गई है कि, कुछ परिस्थितियों में, यह संभव है कि बच्चे वे मूल्य सोख सकेंगे जिनकी बात हमने कल की थी। मगर मैं बधाई देता हूं, मुझे यह बहुत आशावादी लगा। इससे पता चलता है कि यह करना मुश्किल नहीं है। यदि हम यहां इकॉलॉजी या पर्यावरण और प्रकृति की बात करने आए हैं, तो हम आशावादी होना चाहिए - देखें कि हम इसे कैसे कर सकते हैं, इससे और अन्य उदाहरणों से सबक लेकर उन्हें खुद अपने संस्थानों में अंगीकार कर सकते हैं।

मेरे मन में सवाल यह है, और मैं इस शब्द का उपयोग जानबूझकर कर रहा हूं, कि किसी उदाहरण को ज़्यादा व्यावहारिक और मुख्यधारा में उपयोग के काबिल बनाने में और उसके बावजूद बच्चों को उनके आसपास के परिवेश के प्रति आलोचनात्मक रूप से सजग बनाने की भावना को बरकरार रखते हुए उसमें कितना तनुकरण (dilution) या संशोधन या बदलाव संभव है? आखिरकार, मैं यह तो नहीं मानता कि यह ज़रूरी है कि ऐसा करने के लिए सारे संस्थान पूर्णा किस्म के हों। यह अन्य स्कूलों में भी किया जा सकता है, मगर यह कैसे किया जा सकता है, इस पर ज़रूर बहुत मंथन की ज़रूरत है।

उषा रामन

मेरी प्रतिक्रिया, एक मायने में, उन सारे बिंदुओं पर है जो यहां उठाए गए हैं। हम टीचर-प्लस में जो कोशिश कर रहे हैं वह ठीक यही है - अपेक्षाकृत स्वतंत्र जगहों के विकल्पों या अनुभवों के सबक लो और मुख्यधारा के शिक्षक को यह बताओ कि यह संभव है। फिर, जानकारी आती कहां से है? मुझे लगता है कि अधिकांश बड़े शहरों में और यकीनन कई सारे बड़े कस्बों में ऐसे समूह हैं जो विभिन्न मुद्दे उठाने की कोशिश कर रहे हैं। जैसे हैदराबाद में सेव दी रॉक सोसायटी है जो स्कूलों में हस्तक्षेप करना चाहता है। मुझे लगता है, शिक्षकों को ऐसे समूहों को ढूंढना चाहिए, उनसे जुड़ना चाहिए और उन्हें स्कूल में लाना चाहिए, क्योंकि कई स्कूलों के आसपास प्रकृति नहीं है। मेरा सवाल यह है कि हम ऐसे जुड़ाव बनाने में शिक्षकों की मदद कैसे करें। मेरा ख्याल है कि यह संभव है कि ऐसी स्वतंत्र जगहों से सबक लेकर अन्य जगहों के शिक्षकों को बताया जा सकता है कि वे इसे कैसे करें। यह एक महत्वपूर्ण काम है।

इंदिरा

मैं यही सोच रही हूं कि यह मुख्यधारा क्या है। यह लगभग प्रकृति के सवाल जैसा है। क्या यह मानना सही है कि कोई एक चट्टाननुमा मुख्यधारा है - एक छोटा-सा, डरा हुआ, और एक कोने में सिमटा हुआ लोगों का एक

समूह जो असर डालना चाहता है? माफ कीजिए मगर एक सवाल यह है कि क्या हम काम करने के अलग-अलग तरीकों को मुख्यधारा मानें या गैर-मुख्यधारा? यह मेरे जवाब का एक हिस्सा है।

मैं इसे इस तरह से देखती हूं - अलग-अलग लोग, अलग-अलग शिक्षक, अपनी-अपनी समझ और अपनी-अपनी सीमाओं के साथ काम करते हैं। पूर्णा की भी सीमाएं हैं। इसके अलावा, जिस ढंग से लोग सोचते और बातें करते हैं, हरेक का अलग-अलग मत होता है - आप कहते हैं कि यूरिया का इस्तेमाल करना चाहिए, मैं कहती हूं यूरिया का इस्तेमाल नहीं करना चाहिए। ज़रा इसके बारे में बात करें और देखें कि हम जो कह रहे हैं, वह क्यों कह रहे हैं। अलग-अलग मतों को आगे लाना संवाद को जारी रखने का एक तरीका है। मगर अपने-अपने तर्कों पर टिके रहते हुए हमें एक-दूसरे का सम्मान करना चाहिए।

पाठ्यपुस्तक और पाठ्यक्रम विकसित करने की प्रक्रिया में यही होता है और इसमें शिक्षक के लिए वह गुंजाइश होना चाहिए जो उसे अपनी कक्षा में सृजनात्मक होने के लिए ज़रूरी है ताकि वह एक संवाद विकसित कर सके। कृपया ध्यान दें, मैं 'शिक्षक प्रशिक्षण' या पका-पकाया देने की किसी गतिविधि की नहीं, संवाद की बात कर रही हूं जिसकी मदद से पर्यावरणीय मुद्दों की समझ विकसित की जाए। मेरा कहने का मतलब यह नहीं है कि यह आसान है। और मैं यह भी नहीं कह रही हूं कि मैंने इसे गंभीरता से आज़माया है।

पाठ्य पुस्तकों के संदर्भ में, हम पाठ्य पुस्तकों का उपयोग ज़रूर करते हैं। मुझे अच्छी पाठ्य पुस्तकें पसंद हैं, जो मुझे विचार दें, जो मुझे सोचने को प्रेरित करें और बच्चों को सोचने को प्रेरित करें। मेरे ख्याल में एक अच्छी पाठ्य पुस्तक एक ज़बर्दस्त साधन होती है और यदि इससे समझ विकसित होती है, और शिक्षक के पास समझ है, तो आप इसे पर्यावरण से जोड़ सकते हैं। उदाहरण के लिए एक पाठ्य पुस्तक है जो भारत में नहीं लिखी गई थी, इसमें धातुकर्म के अध्याय में कक्षा की एक स्थिति का विवरण था, जिसमें सुझाई गई गतिविधि में एक दृश्य था जो ऐसा लगता था कि आपके आसपास कहीं का भी हो सकता है - दृश्य में एक नदी, एक खदान और लोग थे जिन्हें विस्थापित किया जाना है। और उन्हें (विद्यार्थियों को) खनन के बारे में विभिन्न दृष्टिकोणों से बहस करना था। कक्षा में यह सचमुच बहुत बढ़िया रहा। वास्तव में गोवा में खनन सम्बंधी अनुभव वाले बच्चे, जिसका ज़िक्र मैंने पहले किया था, ने अभी-अभी कक्षा के साथ बातचीत की थी। चर्चा बहुत ही जीवंत रही जिसमें अलग-अलग बच्चों ने अलग-अलग दृष्टिकोण प्रस्तुत किए। एक दृष्टिकोण यह था कि यदि खनन कार्य शुरू होगा तो बहुत सारी नौकरियां मिलेंगी; ये लोग हमारी तरह अच्छे घरों में रह पाएंगे, और क्यों न रहें? क्यों वे हमेशा जंगलों में रहें और नदी में मछलियां पकड़ते रहें? एक समूह था जो खनन के एकदम खिलाफ था, और उन्होंने कहा कि वे मछलियों और पक्षियों की ओर से बात करेंगे, जो इससे प्रभावित होने वाले हैं। वहीं एक आवाज़ थी जिसने पूछा कि 'जानवरों की बात कौन करेगा?' इस तरह के संदर्भों में शिक्षक की मददगार के रूप में मैं पाठ्य पुस्तकों की भूमिका देखती हूं। यदि जानकारी साफ-सुथरे ढंग से और कक्षा में इस्तेमाल योग्य रूप में उपलब्ध है, तो यह बहुत कीमती होती है।

मगर हम शिक्षकों के साथ कैसे काम करें? यह एक बड़ा सवाल है जिसमें इस समय मेरी व्यक्तिगत तौर पर गहरी रुचि है क्योंकि मैंने वह प्रशिक्षण देखा है जो मैंने लिया था। मैंने देखा है कि इसमें क्या हुआ था। मैंने देखा है कि पूर्णा किस ढंग के संवाद निर्मित कर सकता है या करने में नाकाम रह सकता है। पाठ्यक्रम के इर्द-गिर्द संवाद, मेरे बीएड कोर्स में तो नदारद था। एक शिक्षक के नाते मुझे यह विचार कभी नहीं आया कि पाठ्यक्रम एक ऐसी चीज़ है जिस पर मैं नियंत्रण कर सकती हूं। पाठ्यक्रम तो एनसीईआरटी द्वारा राज्य बोर्ड्स के माध्यम से पाठ्य पुस्तकों के रूप में प्रदान किया जाता है। तो शिक्षक के नाते हमें यह पता होना चाहिए कि हमारी क्षमताएं क्या हैं, और इन सब चीज़ों पर सोच-विचार व काम करना शुरू करना चाहिए।

सम्मान व जुड़ाव - ये दो अहम शब्द हैं, जो मैं आपके बीच छोड़ रही हूं। कोई व्यक्ति क्या है, कहां है, कहां से आई

है, इनके लिए उसका सम्मान करें। कक्षा के शिक्षण को बाहर की दुनिया के अनुभवों से जोड़ें। अपने पार्षद से जुड़ें, अपनी कचरा पेटी से जुड़ें। मैं पर्यावरण शिक्षा केंद्र (CEE) में थी और मेरा प्रोजेक्ट था कचरा। मेरे बच्चे कहने लगे थे, 'अम्मा, तुम तो बस कचरे की बात करती हो।' मगर हमारे शहर कचरे में दब रहे हैं क्योंकि हम इसके बारे में सोचने को तैयार नहीं हैं। हमें इसके बारे में सोचना चाहिए। हमें चाहिए कि अपने आसपास के पर्यावरण से जुड़ें और इसे अपना तत्काल सरोकार मानें।

वेणु

शुक्रिया इंदिरा। संवाद और विचार यहां समाप्त नहीं होते, यहां से शुरू होते हैं। समय की सीमा को देखते हुए सबके लिए अपना-अपना दृष्टिकोण व्यक्त कर पाना तो नामुमकिन है। मगर इसका मतलब यह नहीं है कि मौका चूक गए हैं। हम आगे सोच व चर्चा के मौके बनाने की कोशिश कर रहे हैं।

सारांश

वक्ता ने पर्यावरण शिक्षा से जुड़े तीन विचारों की चर्चा कीः

- बच्चा और प्रकृति
- बच्चे में प्रकृति
- प्रकृति के रूप में बच्चा

उन्होंने अपने बचपन और बच्चों के साथ अपनी अंतर्क्रियाओं का एक विचारपूर्ण निजी विवरण पेश किया। इसके माध्यम से उन्होंने यह दर्शाया कि कैसे जीवन के अनुभवों के माध्यम से पर्यावरण व प्रकृति के बारे में संवेदनशीलता विकसित की जा सकती है। इसकी बात करते हुए, वक्ता ने यह बताया कि कैसे बच्चे का सीखना आसपास के पर्यावरण के अनुभवों पर आधारित हो सकता है, और पर्यावरण की एक गहरी समझ व उससे जुड़ाव निर्मित किया जा सकता है। उन्होंने एक ऐसे स्कूल में शिक्षकों के अनुभवों के उदाहरण भी दिए जहां शिक्षा के एक वैकल्पिक ढांचे का उपयोग किया जाता है। इस स्कूल में बच्चों को अपने परिवेश से जुड़ने और अपने अनुभवों पर सोचने की छूट है, और इस प्रक्रिया में वे पर्यावरणीय चेतना और प्रकृति के प्रति ज़िम्मेदारी का एक एहसास विकसित करते हैं। वक्ता ने इस बात की ओर भी ध्यान दिलाया कि शिक्षा के विभिन्न रूपों में प्रकृति व पर्यावरण सम्बंधी अलग-अलग विचार निहित होते हैं और इन्हें लेकर सजग रहने की बात का महत्व भी स्पष्ट किया ताकि प्रकृति की वह समझ बन सके जो पृथ्वी के साथ टिकाऊ ढंग से जीने का मौका देती है।

वक्तव्य के बाद पूछे गए सवालों में जो मुद्दे उठाए गए उनमें पूर्णा जैसे स्कूलों और 'मुख्यधारा' स्कूलों के बीच संवाद की ज़रूरत, स्कूलों और पर्यावरण के सरोकारों से जुड़े संगठनों के बीच संवाद की ज़रूरत तथा यह कि संदर्भ-युक्त व संदर्भ-मुक्त पाठ्य पुस्तकें कक्षा में ऐसे मुद्दों पर संवाद निर्मित करने में क्या भूमिका अदा कर सकती हैं।